International Journal of Sanskrit Research 2019; 5(5): 129-131

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2019; 5(5): 129-131
© 2019 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 13-07-2019
Accepted: 15-08-2019

सन्दीप कुमार
शोध छात्र, दिल्ली विश्व विद्यालय, दिल्ली, भारत

Correspondence
सन्दीप कुमार
शोधछात्रए दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

योगदर्शन में प्रमाण नामक चित्तवृत्ति का स्वरूप, योगवार्त्तिक के विशेष सन्दर्भ में

सन्दीप कुमार

प्रस्तावना

महर्षि पतंजलि ने क्लिष्ट एवं अक्लिष्ट के भेद से पांच प्रकार की चित्तवृत्तियों का वर्णन किया है, जिनका नामोल्लेख क्रमशः इस प्रकार से है – प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा एवं स्मृति।

प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः। [1]

प्रमाणवृत्ति

सांख्योक्त [2] दृष्ट, अनुमान एवं आप्तवचन इन तीनों प्रमाणों को ही योगदर्शन में भी स्वीकार किया जाता है।[3] योगवार्तिककार आचार्य विज्ञानभिक्षु ने प्रमाण का लक्षण इस प्रकार से किया है –

अनधिगतत्वबोधाः प्रमा, तत्करणं प्रमाणमिति। [4]

अर्थात् अज्ञात पदार्थ का ज्ञान प्रमा कहलाता है, एवं प्रमा के करण या साधन को प्रमाण कहते हैं। तत्ववैशारदीकार आचार्य वाचस्पति मिश्र ने भी प्रमाण का लक्षण करते हुए इस प्रकार कहा है कि –

अनधिगतत्वबोधाः पौरुषेयो व्यवहारहेतुः प्रमा, तत्करणं प्रमाणम्। [5]

अर्थात् अज्ञात तत्व का वह ज्ञान जो पुरुष व्यवहार का कारण बनता है, वह प्रमा कहलाता है, एवं प्रमा का साधन प्रमाण कहलाता है।

न्यायदर्शनानुसार भी 'प्रमाकरणं प्रमाणम्।' 'यथार्थानुभवः प्रमा' इत्यादि वचनों से यही स्पष्ट होता है कि प्रमा अर्थात् यथार्थ अनुभव के करण को ही प्रमाण कहा जाता है। [6] भावगणेश, नागोजी भट्ट, रामानन्दयति इत्यादि योग–आचार्यों के मत से भी यही स्पष्ट हो जाता है कि प्रमा के साधन को ही प्रमाण कहते हैं। [7] यद्यपि आचार्यों ने भले ही प्रमा की व्याख्या पृथक्–पृथक् ढंग से की हो, परन्तु प्रमाण के लक्षण के विषय में सभी एकमत है।

प्रत्यक्ष प्रमाण

व्यासभाष्य के अनुसार, जिस प्रकार कृषक द्वारा निर्मित नाली के माध्यम से जल खेत में पहुँचकर उसके ही आकार का हो जाता है, उसी प्रकार चित्त इन्द्रियरूपी प्रणालिका के माध्यम से विषय अर्थात् पदार्थ तक पहुँचता है। एवं पदार्थ के आकार से आकारित होता है। तब पदार्थ के विशेष अंश को प्रधनता से ग्रहण करने वाली जो चित्तवृत्ति बनती है, वही प्रत्यक्ष कहलाती है। [8]

आचार्य विज्ञानभिक्षु कहते हैं कि चित्त इन्द्रियों के साथ ही विषयाकाराकारित होता है। [9] क्योंकि बाह्यवस्तु के साथ चित्त का संयोग बिना इन्द्रिय के नहीं होता, अतः रूपादि विषय के प्रति चक्षुरादि इन्द्रियां भी कारण है। [10]

चित्त की विषयकाराकारिता के बाद जैसी चित्तवृत्ति बनती है उसी के समान पौरुषेयबोध अर्थात् विषयज्ञान होता है, क्योंकि पुरुष जैसा अभिमान करता है वैसा ही उसे ज्ञान होता है, यही पौरुषेयबोध प्रमाण का फल अर्थात् प्रमा कहलाता है। [11]

पुरुष एवं चित्त का एक जैसा ही ज्ञान होता है, एवं यह ज्ञान चित्तवृत्ति अर्थात् बुद्धिवृत्ति के ही रूप का होता है। अतः स्पष्ट है कि पुरुष चित्तवृत्ति का ही अभिमानी होकर बोध करता है, उक्त विवेचन में पंचशिखाचार्य का सूत्र भी प्रमाण रूप में व्यासभाष्य में उपस्थित किया गया है` –

एकमेव दर्शनं ख्यातिरेव दर्शनम्। [12]

पौरुषेयबोध की प्रक्रिया

पौरुषेयबोध की प्रक्रिया क्या है, इस विषय में योगदर्शन में मुख्यतया दो धाराएँ प्रचलित हैं –

1. बिम्बप्रतिबिम्बवाद
2. परस्परबिम्बप्रतिबिम्बवाद

बिम्बप्रतिबिम्बवाद

पौरुषेयबोध के विषय में प्रथम मत के पोषक आचार्य वाचस्पति मिश्र है। जिस प्रकार जपाकुसुम एवं स्फटिकमणि के सन्निहित होने से पृथग्भूत दोनों में एकात्मकता का भ्रम होता है एवं जपाकुसुमगत आरुण्य (लालिमा) धर्म स्फटिक से एकीभूत होकर भासित होता है, ठीक उसी प्रकार बुद्धि एवं पुरुष के सामीप्य के कारण दोनों में एकात्मकता की प्रतीति होती है, एवं बुद्धिगत शान्त, घोर एवं मूढ वृत्तियां पुरुष में अवभासित होती हैं। उस समय पुरुष अपने में बुद्धिवृत्तियों का आरोप होने से 'शान्तोप्रस्मि, दुःखितोऽस्मि, मूढोऽस्मि' इत्यादि व्यवहार करता है। एवं यह एकदम वैसे ही है जैसे व्यक्ति मलिन दर्पण में अपना मुख देखकर यह चिन्ता करता है कि मैं मलिन हूँ। [13]

जब बुद्धि में पुरुष का प्रतिबिम्ब पड़ता है तो वह चेतनवत् हो जाती है तथा इन्द्रिय के माध्यम से विषय तक जाकर तदाकाराकारित हो जाती है, बुद्धि की यही विषयाकाराकारिता बुद्धिवृत्ति कहलाती है, इसी बृद्धिवृत्ति का प्रतिसंवेदन पुरुष करता है। [14] यहाँ पुरुष अपने शुद्धरूप में तो असंग रहता है, परन्तु बुद्धि में पड़ा उसका प्रतिबिम्ब ही बुद्धिवृत्ति को ग्रहण करता है। [15] जैसे–जैसे बुद्धिवृत्तियां बनेगी वैसे–वैसे बुद्धिस्थ पुरुष प्रतिबिम्ब उनका अभिमानी होगा।

वाचस्पति मिश्र ने उदाहरण देकर इस तथ्य को और अध्कि स्पष्ट करने का प्रयास किया है जिस प्रकार बिम्बरूप में स्थिर चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब स्वच्छ जल में पड़ने पर बिना कोई क्रिया किये भी स्वच्छ जल का कम्पन न उस अचल चन्द्रमा को क्रियावान् के सदृश प्रतीत कराता है, ठीक उसी प्रकार अपरिणामी एवं विकारशून्य पुरुष का प्रतिबिम्ब बुद्धिवृत्ति में पड़ने पर बुद्धिवृत्तियों के स्वरूप वाला प्रतीत होता हुआ उनका ज्ञाता होता है यही पुरुष की बुद्धयाकाराकारिता कहलाती है। [16]

पुरुषरूपी बिम्ब का प्रतिबिम्ब बुद्धि में पड़ने पर यह सिद्धान्त बिम्ब–प्रतिबिम्बवाद कहलाता है।

परस्परबिम्बप्रतिबिम्बवाद

आचार्य विज्ञानभिक्षु को इस मत का प्रबल समर्थक माना जाता है। विज्ञानभिक्षु भी बुद्धिवृत्ति बनने तक की प्रक्रिया को यथावत् स्वीकार करते हैं [17], परन्तु वे इस बात को नहीं स्वीकार करते कि बुद्धि में प्रतिबिम्बित पुरुष ही बुद्धिवृत्तियों का अभिमानी होता है। अपितु बुद्धिवृत्ति का प्रतिबिम्ब पुनः पुरुष पर पड़ता है, पुरुष में पड़ा हुआ बुद्धिवृत्ति का यह प्रतिबिम्ब पुरुष को अपने आकार से आकारित कर देता है, यही पुरुष की बुद्धयाकारापत्ति है। [18] इसी अवस्था में ही पुरुष को बुद्धिबोधात्मा अर्थात् बुद्धि का प्रमाता कहा जाता है, इसी अवस्था में ही ''घटज्ञानवानहम्, पटज्ञानवानहम्'' इत्यादिरूप प्रमा होती है। [19]

विज्ञानभिक्षु का मानना है कि पुरुष में बुद्धि का प्रतिबिम्ब अवश्य ही स्वीकार करना चाहिए, अन्यथा पुरुष का कूटस्थ नित्य एवं व्यापक होने से सभी वस्तुओं से सदैव संयोग बना रहेगा, एवं सभी पुरुषों को सभी विषयों का ज्ञान सर्वदा होने लगेगा, जो कि अनुभवसिद्ध अर्थात् व्यवहारिक नहीं हैं, एक उदाहरण देकर विज्ञानभिक्षु ने इसको स्पष्ट करते हुए कहा है कि –जैसे सूर्य के प्रकाश में सभी पदार्थों का प्रकाशित होना अनिवार्य है, वैसे ही परस्पर बिम्ब प्रतिबिम्ब की प्रक्रिया को माने बिना तो विषय–संयुक्त व्यापक पुरुष को सर्वदा विषयज्ञान बना रहेगा, किन्तु यह अव्यवहारिक है। [20] विज्ञानभिक्षु का मानना है कि केवल तर्क के माध्यम से ही पुरुष में बुद्धिवृत्ति के प्रतिबिम्ब की कल्पना नहीं की जाती है, अपितु वे अपने मत की प्रमाणिकता के लिए स्मृति का उदाहरण देकर कहते हैं कि. जिस प्रकार जलाशय में तटवर्ती वृक्ष प्रतिबिम्बित होते हैं उसी प्रकारसे अतिधवल चिद्रूप दर्पण में समस्त दृश्य पदार्थ सामीप्य से स्वच्छ स्फटिकमणि मनुष्यों को लाल दिखलायी पड़ती है, वैसे ही अपने में प्रतिबिम्बित बुद्धिवृत्ति के सामीप्य से पुरुष वृत्तिमान् प्रतीत होता है। [21]

इस सिद्धान्त में पुरुष का प्रतिबिम्ब बुद्धि में पड़ने तथा विषयाकाराकारित बुद्धिवृत्ति का प्रतिबिम्ब पुनः पुरुष में पड़ने से इसको परस्पर बिम्बप्रतिबिम्बवाद कहा जाता है।

अनुमान प्रमाण

अनुमान का लक्षण भाष्यकार व्यास इस प्रकार करते हैं –

> 'अनुमेयस्य तुल्यजातीयेष्वनुवृत्तो भिन्नजातीयेभ्यो व्यावृत्तः। सम्बन्धे यस्तद्विषया सामान्यावधारणप्रधाना वृत्तिरनुमानम्।।'[22]

अर्थात् साध्यविशिष्ट पक्ष के सजातीयों (सपक्षों) में रहने वाला और विजातीयों (विपक्षों) में न रहने वाला जो लिंग है, उस लिंगज्ञान से उत्पन्न होने वाली एवं पदार्थ के सामान्य अंश का मुख्य रूप से ग्रहण करने वाली चित्तवृत्ति अनुमान कहलाती है।

विज्ञानभिक्षु ने अनुमेय का अर्थ साध्यविशिष्ट पक्ष किया है। [23] तुल्यजातीय एवं विजातीय का अर्थ क्रमशः सपक्ष एवं विपक्ष किया है। [24] उनका मानना है कि व्यास ने लक्षण में ''सामान्यावधारणप्रधाना'' का प्रयोग विशेषावधारणप्रधाना प्रत्यक्ष प्रमाणवृत्ति से अनुमानवृत्ति को व्यावृत्त करने के लिए किया है न कि यह पद लक्षण के अन्तर्गत आता है। [25]

व्यास अनुमान का उदाहरण निम्न प्रकार से प्रस्तुत करते हैं –

> ''यथा देशान्तरप्राप्तेर्गतिमच्चन्द्रतारकं चैत्रावत्, विन्ध्यश्चाप्राप्तिरगतिः।'' [26]

इस उदाहरण को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है –

- चन्द्र एवं तारे गतिशील है – प्रतिज्ञा
- भिन्न–भिन्न देशों में पहुंचने के कारण – हेतु
- यथा चैत्र नामक मनुष्य – उदाहरण

विज्ञानभिक्षु कहते हैं कि व्यास ने अन्वय व्याप्ति के लिए चैत्र एवं व्यतिरेक व्याप्ति के लिए विन्ध्य पर्वत का उदाहरण दिया है। [27] जैसे

अन्वय व्याप्ति

जहाँ–जहाँ देशान्तर में पहुँचना देखा जाता है वहाँ–वहाँ गतिमत्ता होती है जैसे चैत्र नामक मनुष्य।

व्यतिरेक व्याप्ति

जहाँ–जहाँ गतिमत्ता नहीं होती वहाँ–वहाँ देशान्तर में पहुँचना नहीं देखा जाता जैसे – विन्ध्य पर्वत।

प्रस्तुत उदाहरण में 'देशान्तरप्राप्तेः' यह लिंग है एवं 'चैत्र' सपक्ष है, व विन्ध्यपर्वत विपक्ष है। अतः अन्वय एवं व्यतिरेक व्याप्ति से स्पष्ट हो जाता है कि लिंग सपक्ष में तो रहता है लेकिन विपक्ष से व्यावृत्त ही है। उपनय एवं विगमन से स्पष्ट हो जाता है कि अनुमान से पदार्थ के सामान्य अंश का ही ग्रहण होता है।

- चन्द्रमा एवं तारे एक से दूसरे स्थान पर पहुँचते हैं – उपनय
- और चन्द्रमा और तारे गतिशील हैं – निगमन

आगम प्रमाण

व्यास ने आगम का लक्षण निम्न प्रकार से किया है –

''आप्तेन दृष्टोऽनुमितो वाऽर्थः परत्र स्वबोधसंक्रान्तये शब्देनोपदिश्यते। शब्दात्तदर्थविषया वृत्तिः श्रोतुरागमः।''[28]

अर्थात् आप्तवक्ता के द्वारा प्रत्यक्षीकृत या अनुमित अर्थ का दूसरे व्यक्तियों को अपना ज्ञान देने के लिए शब्दों के द्वारा जब उपदेश किया जाता है, एवं श्रोता की चित्तवृत्ति शब्दों को सुनने से तदर्थ विषयक बनती है तो उस चित्तवृत्ति को आगम प्रमाण कहते हैं।

लक्षण को स्पष्ट करते हुए व्यास कहते हैं कि यदि आगम का वक्ता दृष्ट एवं अनुमित अर्थ के अभाव में अश्रद्धेय अर्थात् मिथ्या पदार्थ का प्रतिपादन करे, वह आगम अप्रमाणिक होता है। [29] विज्ञानभिक्षु का भी यही मत है कि जो वक्ता दृष्ट एवं अनुमित अर्थ के अभाव में ''चैत्यं वन्देत स्वर्गकामः'' स्वर्ग की कामना वाला बौद्ध देवालय में पूजा करे इस प्रकार की बातें कहें तो वह अप्रमाणिक है। [30] आप्तवक्ता से विज्ञानभिक्षु का तात्पर्य भ्रम, प्रमाद, प्रवंचना, चक्षुरादि त्रयोदश करणों के असामर्थ्यादि दोषों से रहित ज्ञानी पुरुष से है। [31]

वाचस्पतिमिश्र के अनुसार तत्त्वज्ञान, करुणा तथा ज्ञानेन्द्रिय की क्षमता से युक्त व्यक्ति ही आप्त कहलाता है। [32] रामानन्दयति, अनन्तदेव, नागेशभट्ट, भोज इत्यादि व्याख्याकारों ने आप्तवचन वेद एवं आप्तवक्ता ईश्वर को माना है। [33]

उपसंहार

उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि योगशास्त्र में प्रमाण नामक चित्तवृत्ति का स्वरूप क्या है, इसके द्वारा मनुष्य को ज्ञान कैसे होता है, योगदर्शन की ज्ञानमीमांसा भी यही कहलाती है।

संदर्भ

1. वृत्तयः पञ्ज चतथ्यः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः। योगसूत्र 1/5
2. दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च सर्वप्रमाणसिद्धत्वात्।
   त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि।। सांख्यकारिका 4
3. प्रत्यक्षानुमानागमा प्रमाणानि। योगसूत्र 1/7
4. योगवार्तिक, पृ. 151
5. तत्त्ववैशारदी, पृ. 131
6. तर्कभाषा, पृ.
7. (क) अनधिगततत्वबोधः प्रमा, तत्करणं प्रमाणम्। भावगणेश वृ. पृ. 10
   (ख) अनधिगततत्वबोधः प्रमा, तत्करणं प्रमाणम्। ना.वृ. पृ. 10
   (ग) अत्र प्रमाकरणत्वं सामान्यलक्षणम्। प्रमा चाज्ञार्थावगाही पौरुषेयो बोधो वृत्तौ प्रतिबिम्बः। मणिप्रभा, पृ. 11
8. इन्द्रियप्रणालिकया चित्तस्य बाह्यवस्तुपरागात्तद्विषया सामान्यविशेषात्मनोऽर्थस्य विशेषावधरणप्रधना– वृत्तिः प्रत्यक्षं प्रमाणम्। व्यासभाष्य, योगसूत्र 1/7
9. चित्तस्येन्द्रियसाहित्येनैवार्थाकारः परिणामो भवति, न केवलस्य चित्तस्य। योगवार्तिक, पृ. 15
10. रूपादिवृत्तिषु चक्षुरादीनामपि कारणत्वम्। योगवार्तिक, पृ. 15
11. पफलविशिष्टः पौरुषेयश्चित्तवृत्तिबोधः। व्याकरणभाष्य, योगसूत्रा 1/7
12. व्यासभाष्य, योगसूत्रा 1/4
13. जपाकुसुमस्फटिकयोरिव बुद्धिपुरुषयोः सन्निधानादभेदग्रहे बुद्धिवृत्तीः पुरुषे समारोप्य शान्तोऽस्मि, दुःखितोऽस्मि, मूढोऽस्मीत्यध्यवस्यति, यथा मलिने दर्पणतले प्रतिबिम्बितं मुखं मलिनमारोप्य शोचत्यात्मानं मलिनोऽस्मीति। त.वै. पृ. 89
14. चित्तेः स्वबुद्धिसंवेदनं बुद्धेस्तदाकारापत्तौ चितिप्रतिबिम्बधरतया तदरूपतापत्तौ सत्याम्। त.वै. पृ.1647
15. न हि पुरुषगतो बोधे जन्यते, अपितु चैतन्यमेव बुद्धिदर्पणप्रतिबिम्बितम्। त.वै. पृ. 137
16. यथा निर्मलजलेऽसंक्रान्तोऽपि चन्द्रमा संक्रान्तप्रतिबिम्बतया संक्रान्त इव, एवमत्राप्यसंक्रान्ताऽपि संक्रान्तप्रतिबिम्बा चितिशक्तिः संक्रान्तेव, तेन बुद्धयात्मत्वमापन्ना बुद्धिवृत्तिमनुपततीति। त.वै. पृ. 847
17. वृत्तिसरूपपरिणामित्यर्थे चितिः प्रतिसंक्रान्तेव प्रतिबिम्बरूपेण संचरितेव सती तदवृत्तिमनुपत तद्वृत्तिं चेतनवत् करोतीत्यर्थः। यो.वा. पृ. 1651
18. प्राप्तश्चैतन्योपग्रहश्चैतन्य प्रतिबिम्बं येनैतादृशं रूपं यस्या बुद्धिवृत्तेश्तदनुकारिमात्रतया तत्प्रतिबिम्बा– धरतामात्रेणेत्यर्थः। यो.वा. पृ. 1651
19. चितेरेव वृत्तिप्रतिबिम्बोपहितायाः फलत्वं युक्तं ज्ञानशब्देनात्मन एव प्रतिपादनात्। यो.वा. पृ. 160
20. चेतने तावत् बुद्धिप्रतिबिम्बमवश्यं स्वीकार्यम् अन्यथा कूटस्थनित्यविभुचैतन्यस्य सर्वसम्बन्धात्सदैव सर्वं वस्तु सर्वैः ज्ञायते, न हि सूर्यसम्बन्धे सति घटाद्यप्रकाशो दृष्ट इति। यो.वा. पृ. 101
21. न केवलं तर्कादेव चिति बुद्धेः प्रतिबिम्बं कल्प्यते, किन्तु –
   तस्मिश्चिद्दर्पणे स्फारे समस्ता वस्तुदृष्टयः, इमास्ताः
   इमास्ताः प्रतिबिम्बन्ति सरसीवतटद्रुमाः।
   यथा संलक्ष्यते रक्तः केवलः स्फटिको जनैः,
   रञ्जकाद्युपधनेन तद्वत्परमपुरुषः।। इत्यादिस्मृतिशतेश्वीति। यो. वा. पृ. 102
22. व्या.भा. योगसूत्र 1/7
23. साध्यविशिष्टः पक्षोऽनुमेयः। यो.वा. पृ. 162
24. तुल्यजातीयेषु सपक्षेष्वनुवृत्तो, विजातीयेभ्यो विपक्षेभ्यो व्यावृतो। यो.वा. पृ. 162
25. सामान्येत्यादि प्रत्यक्षव्यावृत्तस्वरूपकथनमात्रां न तु लक्षणान्तर्गतम्। यो.वा. पृ. 162
26. व्या.भा. योगसूत्र 1/7
27. अन्वयव्याप्तौ दृष्टान्तश्चैत्रावदिति, व्यतिरेकव्याप्तौ च दृष्टान्तो विन्ध्यश्चाप्राप्तिरगतिरिति। यो.वा. पृ. 163
28. व्या.भा. योगसूत्र 1/7
29. यस्याश्रद्धेयार्थो वक्ता न दृष्टानुमितार्थः स आगमः प्लवते। व्या. भा. यो.सू. 1/7
30. दृष्टानुमितार्थकत्वाभावेनाश्रद्धेयार्थोऽवेद्यप्रतिपादको यस्यागमस्य वक्ता स आगमः शास्त्रं चैत्यं वन्देत स्वर्गकाम इत्यादिरूपं प्लवते। यो.वा. पृ. 164
31. आप्तेवेति। भ्रमप्रमादविप्रलिप्साकरणापाटवादिदोषरहेतेनेत्यर्थः। यो.वा. पृ. 164
32. तत्त्वदर्शनकारुण्यकरणपाटवादिसम्बन्ध आप्तिः, तया सह वर्ततः इत्याप्तः। त.वै. पृ. 148
33. (क) वेदस्याप्तेश्वरप्रणीतत्वं वक्ष्यते। मणिप्रभा, पृ. 11
   (ख) आप्तस्य ईश्वरस्य वाक्यं वेदः। चन्दिका, पृ. 11
   (ग) मन्वाद्युक्तार्थानामपि तन्मूलवेदवक्ता ईश्वरः। ना.वृ. पृ. 11
   (घ) आप्तवचनं आगमः। भोजवृत्ति, पृ. 11